

संपादकीय

शहर बिक रहा है, सिस्टम देख रहा है

प्रदेश के किसी भी शहर में चले जाइए, रेलवे स्टेशन के बाहर, अस्पताल के सामने, बाजार में या कलेक्ट्रेट के बगल में, हर जगह हाथ में रसीद लिए कोई न कोई खड़ा मिल जाएगा। दस, बीस या पचास रुपये मांगने पर सवाल पूछिए तो जवाब मिलता है, ऊपर तक पैसा जाता है। मध्य प्रदेश के नगरीय निकायों में पार्किंग के नाम पर चल रहे इस कथित गुंडराज पर नगरीय विकास विभाग के अपर मुख्य सचिव संजय दुबे को भी सवाल उठाने पड़े। इंदौर में पार्किंग शुल्क के नाम पर नगर निगम को महज 25 लाख रुपये मिल रहे हैं, जबकि वास्तविक वसूली पांच करोड़ रुपये से अधिक कार्वाई जा रही है। सवाल है कि बाकी रकम किसकी जेब में जा रही है और जिम्मेदार अधिकारी कार्वावाई क्यों नहीं कर रहे हैं?

शहर की अर्थव्यवस्था में फुटपाथ पर कारोबार करने वाले गरीबों को भी बड़ी भूमिका है। सब्जी, चाय, भुट्टे और कपड़े बेचकर परिवार पालने वाले छोटे व्यापारियों को कथित तौर पर रोजाना अवैध वसूली का सामना करना पड़ता है। नगर निगम ने कागजों पर वेंडिंग जॉन बना दिए, लेकिन अनेक ठेले वाले आज भी सड़कों पर खड़े होने को मजबूर हैं। उन्हें न केवल कार्वाई का डर सताता है, बल्कि कथित वसूली करने वालों को भी पैसे देने पड़ते हैं। यह स्थिति प्रशासनिक व्यवस्था पर गंभीर सवाल खड़े करती है।

प्रदेश के नगरीय निकाय अपनी कुल आय का केवल 32 प्रतिशत हिस्सा ही स्वयं जुटा पा रहे हैं, जबकि 68 प्रतिशत राशि सरकारी अनुदान से आती है। विभागीय आंकड़ों के अनुसार, प्रदेश में 13 हजार कचरा वाहन चल रहे हैं, लेकिन केवल 200 में जीपीएस लगा है। वाहनों की निगरानी के अभाव में ईंधन की खपत और खर्च पर नियंत्रण कैसे होगा? इसी तरह अवैध होर्डिंग से निकायों को होने वाला नुकसान भी चिंता का विषय है।

अपर मुख्य सचिव ने व्यवस्थाओं पर नाराजगी जताई। इसके बाद 48 अधिकारियों को खिलाफ विभागीय जांच शुरू हुई और आठ संभागों में 62 प्रकरणों में 146 अधिकारियों पर कार्वाई की गई। कुछ मुख्य नगर पालिका अधिकारियों को वेतनवृद्धि रोकी गई और वसूली भी की गई। यह शुरुआत अच्छी है, लेकिन सवाल है कि कार्वाई केवल छोटे अधिकारियों तक सीमित तो नहीं रह जाएगी? अवैध पार्किंग, होर्डिंग और वसूली के पीछे यदि राजनीतिक संरक्षण है, तो उस पर भी कार्वाई होनी चाहिए।

समस्या का समाधान स्पष्ट व्यवस्था और जवाबदेही में है। हर वैध पाकिंग पर शुल्क सुची, ठेकेदार का नाम और क्यूआर कोड वाला बोर्ड अनिवार्य किया जाए। भुगतान सीधे नगर निगम के खाते में हो। ठेले वालों को पहचान त्र्न और निर्धारित स्थान मिले तथा आवंटन पारदर्शी प्रक्रिया रहे। सभी कचरा वाहनों में जीपीएस लगाया जाए और विज्ञापन संवैधी टेंडर पारदर्शी तरीके से जारी हों।

नगरीय निकाय अपनी आय का मासिक ब्यौरा वेबसाइट पर सार्वजनिक करें, ताकि जनता जान सके कि पार्किंग, होर्डिंग और दुकानों से कितनी कमाई हो रही है। मुख्यमंत्री और नगरीय विकास मंत्री को भी राजनीतिक संरक्षण में चल रहे अवैध कारोबार पर सख्त कार्वाई सुनिश्चित करनी चाहिए। शहर किसी अधिकारी, नेता या ठेकेदार की जगहिर नहीं हैं। वे उन लाखों नागरिकों का घर हैं, जो कर चुकाते हैं और बेहतर सुविधाओं की अपेक्षा रखते हैं। अब समय है कि व्यवस्था अपनी जिम्मेदारी समझे और शहरों की कमाई पर कथित लूट का सिलसिला रोके।

आजकल

राजनीतिक मर्यादा का गिरता स्तर और लोकतंत्र की चुनौती

देश की राजनीति में इन दिनों नीतियों पर बहस कम और निजी हमले अधिक हो रहे हैं। विरोधी दलों के नेताओं के परिवार और यहां तक कि उनके स्वर्गीय माता-पिता को भी निशाना बनाया जा रहा है। पहले राजनीति में विचारधारा, आर्थिक नीति और विदेश नीति पर बहस होती थी, लेकिन अब यह लड़ाई व्यक्तिगत असमान तक पहुंच गई है। यह प्रवृत्ति लोकतंत्र के लिए खतरनाक है, क्योंकि इससे जनता का ध्यान महोर्दई, बेरोजगारी, शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे वास्तविक मुद्दों से हटता है।

भारतीय दुनिया में माता-पिता को देवतुल्य माना गया है। ' मातु देवो भव, पितृ देवो भव' का संदेश हमारे संस्कारों का आधार है। जो व्यक्ति राजनीति में सक्रिय नहीं है और इस दुनिया में भी नहीं है, उसके बारे में अपमानजनक टिप्पणी करना हमारी सांस्कृतिक परंपराओं के विरुद्ध है। किसी नेता से असहमति होने पर उसकी नीतियों और कार्यशैली की आलोचना होनी चाहिए, उसके परिवार को निशाना नहीं बनाया जाना चाहिए।

भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। यहां असहमति और संवाद की लंबी परंपरा रही है। स्वतंत्रता के बाद भी नेताओं के बीच तीखी बहस होती थी, लेकिन राजनीतिक विरोध में मर्यादा का ध्यान रखा जाता था। आज सोशल मीडिया और टेलीविजन पर सुर्खियां बटोरने की होड़ में यह मर्यादा टूट रही है। दुर्भाग्यपूर्ण बयानों पर राजनीतिक दलों की चुप्पी भी चिंता का संकेत है। इससे ऐसे व्यवहार को मौन स्वीकृति मिलने का संदेश जाता है।

देश की जनता नेताओं से रोजगार, किसानों की आय, बेहतर शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं जैसे मुद्दों पर जवाब चाहती है। वह नहीं चाहती कि राजनीतिक दल दिन सवालों को छोड़कर व्यक्तिगत आरोप-प्रत्यारोप में उलझे रहें।इस समस्या का समाधान राजनीतिक दलों की इच्छाशक्ति में है। सभी दलों को अपने नेताओं के लिए स्पष्ट आचार संहिता बनानी चाहिए और मर्यादा के उल्लंघन करने वालों पर कार्रवाई करनी चाहिए। मीडिया को भी ऐसे बयानों को महिमामंडित करने के बजाय उनकी आलोचना करनी चाहिए।

विरोध और आलोचना लोकतंत्र के आवश्यक अंग हैं, लेकिन उनकी भी सीमाएं हैं। माता-पिता का सम्मान भारतीय संस्कृति का सम्मान है। राजनीतिक मर्यादा बनाए रखना सभी दलों, नेताओं और नागरिकों की जिम्मेदारी है। तभी लोकतंत्र मजबूत होगा और राजनीति में जनता का विश्वास कायम रहेगा।

हम सभी बचपन से सुनते आए हैं कि स्वस्थ रहने के लिए हरी सब्जियां खाओ, प्रोटीन लो और जंक फूड छोड़ो। लेकिन अब डॉक्टर और वैज्ञानिक एक दूसरा सवाल भी पूछ रहे हैं कि आप खाते कब हैं? दो व्यक्ति एक जैसा खाना खाते हैं। एक सुबह आठ बजे नाश्ता, दोपहर एक बजे भरपेट भोजन और शाम सात बजे हल्का खाना खाता है। दूसरा सुबह नाश्ता छोड़ देता है, दोपहर में चाय-बिरकट से काम चलाता है और रात ग्यारह बजे भरपेट बिरयानी खाता है। कुछ समय बाद दोनों के वजन, नींद और रक्त शर्करा पर अलग-अलग असर दिखाई दे सकता है। यहीं से शुरू होते हैं क्रोनोनुट्रिशन यानी शरीर की आंतरिक घड़ी के अनुसार भोजन करने की अवधारणा।

हमारे शरीर में एक अदृश्य घड़ी चलती है। दिमाग में मौजूद मास्टर क्लॉक और लीवर, आंत तथा अग्न्याशय जैसे अंगों की आंतरिक घड़ियां शरीर की विभिन्न प्रक्रियाओं को नियंत्रित करती हैं। सुबह की रोशनी शरीर को सक्रिय होने का संकेत देती है। शाम होते-होते

आज के दौर में वैवाहिक जीवन पहले जैसा सरल नहीं रहा है। पति-पत्नी दोनों नौकरी में हैं, दोनों की अपनी सोच है, अपनी महत्वाकांक्षाएं हैं और अपनी सीमाएं भी हैं। ऐसे में रोजमर्रा की टकराहट बढ़ गई है। छोटी-छोटी बातों पर बड़े झगड़े हो जाते हैं और झगड़े बढ़ते-बढ़ते थाने और अदालत तक पहुंच जाते हैं। अक्सर देखा जाता है कि गुस्से में आकर जोड़े सीधे तलाक की मांग कर देते हैं, जबकि तलाक के बाद जीवन और अधिक कठिन हो जाता है, खासकर महिलाओं और बच्चों के लिए। इस जल्दबाजी को रोकने और रिश्तों को एक और मौका देने के लिए कानून में एक बीच का रास्ता दिया गया है, जिसे न्यायिक पृथक्करण कहा जाता है।

हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 10 में इस व्यवस्था का उल्लेख है। इसके अनुसार, पति-पत्नी तलाक लिए बिना अलग-अलग रह सकते हैं। इसमें विवाह समाप्त नहीं होता, बल्कि साथ रहने का दायित्व समाप्त हो जाता है। कोर्ट दोनों की सहमति या परिस्थितियों के आधार पर शर्त तय कर सकती है, जैसे कौन कहां रहेगा, बच्चों की देखभाल कैसे होगी और खर्च का बंटवारा कैसे होगा। इसका सबसे बड़ा लाभ यह है कि यदि भविष्य में दोनों के बीच सुलह हो जाए, तो वे फिर से साथ रह सकते हैं। न्यायिक पृथक्करण की डिक्री को रद्द कराया जा सकता है, जबकि तलाक के बाद विवाह बहाल करने के लिए दोबारा शादी करनी पड़ती है। यह लिव-इन रिलेशनशिप नहीं है।

बहुत से लोग भ्रम में रहते हैं कि लिव-इन सेपरेशन और लिव-इन रिलेशनशिप एक ही बात है, जबकि दोनों में जमीन-आसमान का अंतर है। लिव-इन रिलेशनशिप में दो लोग बिना शादी के साथ रहते हैं, जबकि बीच वैवाहिक बंधन नहीं होता, जबकि लिव-इन सेपरेशन में दो लोग शादीशुदा होते हैं और विवाह को

बनाए रखते हुए अलग रहते हैं। एक में विवाह के बिना साथ रहने की व्यवस्था होती है, जबकि दूसरे में विवाह को बनाए रखते हुए अलग रहने की। समाज में लिव-इन रिलेशनशिप को लेकर आज भी कई तरह की आपत्तियां हैं, जबकि न्यायिक पृथक्करण एक कानूनी व्यवस्था है। आज पति-पत्नी दोनों पर काम का दबाव है। घर और बाहर, दोनों की जिम्मेदारियां हैं। ऐसे में जब दोनों थक-हारे घर आते हैं, तो छोटी-सी बात पर भी विवाद बढ़ जाता है। यदि ऐसे समय में कुछ महीनों का अलगाव मिल जाए, तो दोनों अपने मन को शांत कर सकते हैं और अपनी गलतियों को समझ सकते हैं।

रोज के झगड़ों में बच्चे सबसे अधिक प्रभावित होते हैं। वे डर में जीते हैं, पढ़ाई में मन नहीं लगता और कई बार गलत रास्ते पर चले जाते हैं। यदि माता-पिता अलग रहकर शांति से बच्चों से मिलें, तो बच्चों को बेहतर माहौल मिल सकता है। भारत में आज भी तलाक को कलंक की तरह देखा जाता है, विशेषकर महिलाओं के लिए तलाक के बाद जीवन और कठिन हो जाता है। रिश्तेदार ताने मारते हैं और नौकरी में भी कई बार भेदभाव होता है। न्यायिक पृथक्करण में महिला विवाहित रहती है, इसलिए विवाह को कानूनी स्थिति बनी रहती है। आर्थिक सुरक्षा भी महत्वपूर्ण है। तलाक में अक्सर भरण-पोषण को लेकर लंबी लड़ाई चलती है और कई बार महिलाएं आर्थिक रूप से टूट जाती हैं। न्यायिक पृथक्करण के दौरान भी कानून के अनुसार भरण-

सोशल मीडिया लोकतंत्र का दुश्मन या दोस्त, भारत ने दिया जवाब

प्यू रिसर्च सेंटर के ताजा सर्वे ने दुनिया को चौंका दिया है। अमेरिका, जर्मनी, ब्रिटेन और फ्रांस जैसे देशों में लोग सोशल मीडिया को लोकतंत्र के लिए खतरा मान रहे हैं, वहीं भारत में 65 प्रतिशत लोग इसे लोकतंत्र के लिए अच्छी बात बता रहे हैं। यह सर्वे केवल आंकड़ों की कहानी नहीं है, बल्कि सोच के दो अलग-अलग संसारों को दर्शाता है। एक संसार इससे थक चुका है, जबकि दूसरा उम्मीदों से भरा है।

सर्वे में पूछा गया कि उनके देश में सोशल मीडिया का प्रभाव लोकतंत्र पर अच्छा है या बुरा। अमेरिका में 64 प्रतिशत लोगों ने इसे बुरा बताया। जर्मनी में 61 प्रतिशत, ब्रिटेन में 56 प्रतिशत और फ्रांस में 44 प्रतिशत लोगों की राय भी ऐसी ही थी। भारत में केवल 23 प्रतिशत लोगों ने इसे बुरा माना, जबकि 65 प्रतिशत ने इसे अच्छा बताया।

भारतीयों को सोशल मीडिया में लोकतंत्र का उजाला क्यों दिखाई देता है? इसका सबसे बड़ा कारण आम आदमी की आवाज को मिला मंच है। पहले लोकतंत्र में संवाद के माध्यम सीमित थे। नेता बोलते थे, अखबार छापते थे और टेलीविजन दिखाता था। आम आदमी की भूमिका अक्सर सुनने तक सीमित रहती थी। सोशल मीडिया ने इस दीवार को तोड़ दिया। आज ऑटो चालक बोंडिगो बनाकर नगर निगम से सवाल पूछ सकता है और छात्र शिक्षा मंत्री तक अपनी समस्या पहुंच सकता है। इससे आम भारतीय को लगता है कि लोकतंत्र अब उसके दरवाजे तक पहुंच गया है। सस्ता इंटरनेट भी इस बदलाव का बड़ा कारण है। इसने गांव के किसान को यूट्यूब तक पहुंचाया है और महिला समूहों को व्हाट्सएप के माध्यम से अपने उत्पाद बेचने का अवसर दिया है। जब तकनीकी रोजगार और आजीविका से जुड़ती है, तो लोगों का नजरिया सकारात्मक होना स्वाभाविक है। सोशल मीडिया ने वैकल्पिक खबरों के माध्यम से भी लोगों को अपनी बात रखने और सत्ता से सवाल पूछने का अवसर दिया है।

इसके विपरीत, अमेरिका और यूरोप में सोशल मीडिया को लेकर मोहभंग बढ़ा है। वहां लोगों ने देखा है कि किस तरह डेटा के दुरुपयोग, भ्रामक सूचनाओं और एल्गोरिदम के जरिए गुस्से तथा नफरत को बढ़ावा मिल सकता है। फर्जी खबरों ने लोकतांत्रिक संवाद को प्रभावित किया है। लोगों को लगता है कि सोशल मीडिया ने बातचीत की जगह विवाद और धुंधीकरण बढ़ाया है। भारत अभी इस जगह तक नहीं पहुंचा है, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि यहां खतरे मौजूद नहीं हैं। भारत में भी अफवाहों के कारण हिंसा हुई है,

चुनावों के दौरान नफरत फैलाने वाली सामग्री सामने आई है और फर्जी वीडियो ने तनाव बढ़ाया है। इसके बावजूद लोग सोशल मीडिया को सकारात्मक मानते हैं, क्योंकि उनके लिए इससे लाभ अधिक महत्वपूर्ण दिखाई देते हैं। एक छात्र को मुफ्त शिक्षा सामग्री मिलना या छोटे दुकानदार को नए ग्राहक मिलना उसके लिए बड़ा लाभ है।

सोशल मीडिया ने लोकतंत्र के दो चेहरे सामने रखे हैं। एक ओर इसने हर व्यक्ति को अपनी बात रखने का अवसर दिया है। सड़क का गड़गु हो या किसी अधिकारी की लापरवाही, अब उसे छिपाना नहीं किया नहीं है। दूसरी ओर, सूचनाओं के अत्यधिक शोर में सच की आवाज दब जाती है। झूठ तेजी से फैलता है और कई बार भीड़ सच को ही गलत मानने लगती है। भारत में अभी इसका सकारात्मक चेहरा अधिक प्रभावी दिखाई देता है, जबकि पश्चिमी देशों में इसके नकारात्मक प्रभावों को लेकर चिंता अधिक है।

प्यू रिसर्च का सर्वे चेतावनी भी देता है कि यदि सोशल मीडिया के दुष्प्रभावों पर नियंत्रण नहीं किया गया, तो भारत में भी लोगों का भरोसा कमजोर पड़ सकता है। इसके लिए डिजिटल साक्षरता बढ़ाना जरूरी है। स्कूलों और कॉलेजों में बच्चों को सिखाया जाना चाहिए कि हर संदेश सच नहीं होता और किसी खबर को साझा करने से पहले उसकी सत्यता जांचना आवश्यक है। फेसबुक, इंस्टाग्राम, एक्स और यूट्यूब जैसी कंपनियों को हिंदी, भोजपुरी, तमिल, तेलुगु और बंगाली सहित भारतीय भाषाओं में भ्रामक सामग्री को पहचान और जांच मजबूत करनी होगी। सरकार को भी ऐसा संतुलित कानून बनाना चाहिए, जो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा करते हुए नफरत और अफवाहों पर अंकुश लगाए।

दुनिया में जब लोकतंत्र पर सवाल उठ रहे हैं, तब भारत का आशावाद उम्मीद जगाता है। यह बताता है कि तकनीकी को कोसने के बजाय उसे बेहतर बनाना जरूरी है। यदि भारत सोशल मीडिया को सही दिशा दे पाया, तो वह दुनिया के लिए उदाहरण बन सकता है। अमेरिका में 64 प्रतिशत लोग इसे बुरा मानते हैं, जबकि भारत में 65 प्रतिशत इसे अच्छा मानते हैं। यह अंतर केवल आंकड़ों का नहीं, बल्कि अनुभवों का भी है। सोशल मीडिया न पूरी तरह देवता है, न राक्षस। वह एक माध्यम है, जिसका परिणाम उसके इस्तेमाल पर निर्भर करता है। भारत ने इसे दोस्त माना है। इस दोस्ती को जिम्मेदारी और विवेक के साथ निभाना ही लोकतंत्र की असली चुनौती है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

लिव-इन सेपरेशन: विवाह को बचाए रखते हुए अलग रहने की समझदार राह तलाक से पहले एक ठहराव की जरूरत...

आज के दौर में वैवाहिक जीवन पहले जैसा सरल नहीं रहा है। पति-पत्नी दोनों नौकरी में हैं, दोनों की अपनी सोच है, अपनी महत्वाकांक्षाएं हैं और अपनी सीमाएं भी हैं। ऐसे में रोजमर्रा की टकराहट बढ़ गई है। छोटी-छोटी बातों पर बड़े झगड़े हो जाते हैं और झगड़े बढ़ते-बढ़ते थाने और अदालत तक पहुंच जाते हैं। अक्सर देखा जाता है कि गुस्से में आकर जोड़े सीधे तलाक की मांग कर देते हैं, जबकि तलाक के बाद जीवन और अधिक कठिन हो जाता है, खासकर महिलाओं और बच्चों के लिए। इस जल्दबाजी को रोकने और रिश्तों को एक और मौका देने के लिए कानून में एक बीच का रास्ता दिया गया है, जिसे न्यायिक पृथक्करण कहा जाता है।

हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 10 में इस व्यवस्था का उल्लेख है। इसके अनुसार, पति-पत्नी तलाक लिए बिना अलग-अलग रह सकते हैं। इसमें विवाह समाप्त नहीं होता, बल्कि साथ रहने का दायित्व समाप्त हो जाता है। कोर्ट दोनों की सहमति या परिस्थितियों के आधार पर शर्त तय कर सकती है, जैसे कौन कहां रहेगा, बच्चों की देखभाल कैसे होगी और खर्च का बंटवारा कैसे होगा। इसका सबसे बड़ा लाभ यह है कि यदि भविष्य में दोनों के बीच सुलह हो जाए, तो वे फिर से साथ रह सकते हैं। न्यायिक पृथक्करण की डिक्री को रद्द कराया जा सकता है, जबकि तलाक के बाद विवाह बहाल करने के लिए दोबारा शादी करनी पड़ती है। यह लिव-इन रिलेशनशिप नहीं है।

बहुत से लोग भ्रम में रहते हैं कि लिव-इन सेपरेशन और लिव-इन रिलेशनशिप एक ही बात है, जबकि दोनों में जमीन-आसमान का अंतर है। लिव-इन रिलेशनशिप में दो लोग बिना शादी के साथ रहते हैं, जबकि बीच वैवाहिक बंधन नहीं होता, जबकि लिव-इन सेपरेशन में दो लोग शादीशुदा होते हैं और विवाह को

बनाए रखते हुए अलग रहते हैं। एक में विवाह के बिना साथ रहने की व्यवस्था होती है, जबकि दूसरे में विवाह को बनाए रखते हुए अलग रहने की। समाज में लिव-इन रिलेशनशिप को लेकर आज भी कई तरह की आपत्तियां हैं, जबकि न्यायिक पृथक्करण एक कानूनी व्यवस्था है। आज पति-पत्नी दोनों पर काम का दबाव है। घर और बाहर, दोनों की जिम्मेदारियां हैं। ऐसे में जब दोनों थक-हारे घर आते हैं, तो छोटी-सी बात पर भी विवाद बढ़ जाता है। यदि ऐसे समय में कुछ महीनों का अलगाव मिल जाए, तो दोनों अपने मन को शांत कर सकते हैं और अपनी गलतियों को समझ सकते हैं।

रोज के झगड़ों में बच्चे सबसे अधिक प्रभावित होते हैं। वे डर में जीते हैं, पढ़ाई में मन नहीं लगता और कई बार गलत रास्ते पर चले जाते हैं। यदि माता-पिता अलग रहकर शांति से बच्चों से मिलें, तो बच्चों को बेहतर माहौल मिल सकता है। भारत में आज भी तलाक को कलंक की तरह देखा जाता है, विशेषकर महिलाओं के लिए तलाक के बाद जीवन और कठिन हो जाता है। रिश्तेदार ताने मारते हैं और नौकरी में भी कई बार भेदभाव होता है। न्यायिक पृथक्करण में महिला विवाहित रहती है, इसलिए विवाह को कानूनी स्थिति बनी रहती है। आर्थिक सुरक्षा भी महत्वपूर्ण है। तलाक में अक्सर भरण-पोषण को लेकर लंबी लड़ाई चलती है और कई बार महिलाएं आर्थिक रूप से टूट जाती हैं। न्यायिक पृथक्करण के दौरान भी कानून के अनुसार भरण-

पोषण की मांग की जा सकती है और पति को जिम्मेदारी परिस्थितियों के अनुसार बनी रह सकती है। तलाक की प्रक्रिया का सबसे बुरा पक्ष एक-दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप लगाना होता है। अदालत में पति-पत्नी एक-दूसरे के चरित्र पर उंगली उठाते हैं। झूठे मुकदमे दर्ज होते हैं। दहेज, धरलू हिंसा और नाजायज संबंध जैसे आरोपों से पूरा परिवार बदनाम होता है। यह लड़ाई सालों चलती है और अंत में दोनों पक्ष टूट जाते हैं। न्यायिक पृथक्करण में भी कानूनी आधार और आवश्यक प्रक्रिया का पालन करना पड़ता है, लेकिन इसका उद्देश्य कड़वाहट कम करने और भविष्य में सुलह की गुंजाइश बनाए रखने में मदद मिल सकती है।

नई पीढ़ी में विवाह को लेकर डर बढ़ रहा है। इसका एक कारण तलाक के बढ़ते मामलों भी हैं। सोशल मीडिया पर रोज तलाक की खबरें देखकर युवा सोचते हैं कि शादी एक जाल है। इस डर के कारण कई युवा शादी से बच रहे हैं या लिव-इन में रहना पसंद कर रहे हैं। यदि समाज में

यह संदेश जाए कि शादी में कोई समस्या आने पर तुरंत तलाक लेने के बजाय एक बीच का रास्ता भी है, तो युवाओं का विवाह पर भरोसा बढ़ेगा। उन्हें लगेगा कि शादी कोई जेल नहीं है, जहां से निकलने का कोई रास्ता नहीं, बल्कि यह एक ऐसा बंधन है जिसमें सांस लेने की जगह भी है।

अक्सर थातों में पति-पत्नी के झगड़े आते हैं। पुलिस तुरंत एफआईआर दर्ज कर देती है या महिला थाने में काउंसिलिंग के नाम पर औपचारिकता पूरी कर दी जाती है। यदि पुलिस और काउंसलर इस विकल्प के बारे में जागरूक हों, तो कई परिवार टूटने से बच सकते हैं। अदालतों में भी तलाक के मामलों का बोझ बहुत अधिक है। यदि न्यायाधीश उचित मामलों में शुरुआत में ही न्यायिक पृथक्करण के विकल्प पर विचार करने की सलाह दें, तो कई मामलों में सुलह की गुंजाइश बन सकती है। इससे अदालत का समय भी बच सकता है और परिवारों को भी एक अवसर मिल सकता है।

वकीलों की भी जिम्मेदारी है कि वे केवल फीस के लिए तलाक की सलाह न दें, बल्कि अपने मुवक्किलों को सभी विकल्प समझाएं। एक अच्छा वकील वही है, जो रिश्ता बचाने की संभावनाओं पर भी विचार करे। न्यायिक पृथक्करण को सार्थक बनाने के लिए कुछ बातों का ध्यान रखना जरूरी है। अलग रहते हुए भी संवाद पूरी तरह बंद नहीं होना चाहिए। सप्ताह में एक बार बच्चों या जरूरी विषयों पर बातचीत होती रहनी चाहिए। अलग रहने का अर्थ यह नहीं है कि वैवाहिक जिम्मेदारियों को

आते हैं। पुलिस तुरंत एफआईआर दर्ज कर देती है या महिला थाने में काउंसिलिंग के नाम पर औपचारिकता पूरी कर दी जाती है। यदि पुलिस और काउंसलर इस विकल्प के बारे में जागरूक हों, तो कई परिवार टूटने से बच सकते हैं। अदालतों में भी तलाक के मामलों का बोझ बहुत अधिक है। यदि न्यायाधीश उचित मामलों में शुरुआत में ही न्यायिक पृथक्करण के विकल्प पर विचार करने की सलाह दें, तो कई मामलों में सुलह की गुंजाइश बन सकती है। इससे अदालत का समय भी बच सकता है और परिवारों को भी एक अवसर मिल सकता है।

वकीलों की भी जिम्मेदारी है कि वे केवल फीस के लिए तलाक की सलाह न दें, बल्कि अपने मुवक्किलों को सभी विकल्प समझाएं। एक अच्छा वकील वही है, जो रिश्ता बचाने की संभावनाओं पर भी विचार करे। न्यायिक पृथक्करण को सार्थक बनाने के लिए कुछ बातों का ध्यान रखना जरूरी है। अलग रहते हुए भी संवाद पूरी तरह बंद नहीं होना चाहिए। सप्ताह में एक बार बच्चों या जरूरी विषयों पर बातचीत होती रहनी चाहिए। अलग रहने का अर्थ यह नहीं है कि वैवाहिक जिम्मेदारियों को

आगजनी के बाद एक ही कहानी सुनाई जाती है। शॉर्ट सर्किट हो गया, सिलेंडर फट गया, आग बुझाने के इंतजाम नहीं थे। पर कोई यह नहीं पूछता कि वह इमारत बनी कैसे? जिस इमारत में आग बुझाने का रास्ता ही नहीं था, उसका नक्शा पास कैसे हो गया? जिस अस्पताल में दो सीढ़ियां होनी चाहिए थीं, वहां एक सीढ़ी पर ताला कैसे लग गया? जिस कोचिंग सेंटर में पीछे का दरवाजा होना चाहिए था, वहां दीवार कैसे खड़ी हो गई? सच यह है कि मौत आग लगने के दिन नहीं होती, मौत उस दिन हो जाती है, जिस दिन उस इमारत की नींव में पहली ईंट रखी जाती है और संबंधित विभाग आंखें बंद कर लेते हैं। मध्य प्रदेश में फायर सेफ्टी के नए नियम आए हैं। इमारतों की गुप ए, बी और सी में बांटा गया है। होटल, हॉस्टल, फ्लैट, स्कूल, कॉलेज, अस्पताल और जेल, सबके लिए अलग-अलग मानक तय किए गए हैं। कागज पर नए नियम लगते हैं, लेकिन जवाबदेही कौन तय करेगा? फायर विभाग का अधिकारी मौके पर निरीक्षण किए बिना एनओसी दे देता है और भवन अनुज्ञा की अंतिम अनुमति देने वाला अधिकारी भी फाइल पर हस्ताक्षर कर देता है। इस तरह इमारत बनने से पहले ही सुरक्षा व्यवस्था से समझौता शुरू हो जाता है।

एक आदर्श इमारत में फायर टैंक, बेसमेंट में धुआं निकालने के लिए वेंटिलेशन और हर फ्लोर पर सुरक्षित निकास की व्यवस्था होनी चाहिए। लेकिन कई जगह पार्किंग की जगह गोदाम बना दिए जाते हैं, खुले हिस्से में दुकानें बढ़ा दी जाती हैं और फायर एग्जिट पर ताला लगा दिया जाता है। छत पर फायर सेफ्टी के लिए आरक्षित जगह का भी दूसरे कामों में इस्तेमाल होने लगता है। यह सब रोकना संबंधित विभागों की जिम्मेदारी है। अस्पतालों, स्कूलों और कोचिंग सेंटरों में लापरवाही के परिणाम सबसे भयावह हो सकते हैं। अस्पतालों में निकास मार्ग बाधित हों, ऑक्सीजन प्लांट और जनरेटर की व्यवस्था असुरक्षित हो या मरीजों के स्ट्रेचर सीढ़ियों पर रख हों, तो आग

लगने की स्थिति में जान बचाना मुश्किल हो जाता है। स्कूलों में अग्निशमन यंत्रों की समय पर जांच और रिफिलिंग नहीं होती। शिक्षकों और बच्चों को फायर ड्रिल का अभ्यास भी नहीं कराया जाता। कोचिंग सेंटरों में छोटे कमरों में बड़ी संख्या में विद्यार्थियों को बैठाया जाता है और निकास के पर्याप्त रास्ते नहीं होते। निर्माण के समय ही इन कमियों को दूर किया जा सकता है। यदि निर्माण के दौरान ही फायर टैंक, सीढ़ियों और निकास मार्गों की जांच अनिवार्य रूप से होती, तो कई हादसों को रोक जा सकता था। लेकिन अक्सर इमारतें बनने दी जाती हैं, लोग उनमें रहने या काम करने लगते हैं, फिर आग लगती है, मौतें होती हैं और जांच समितियां बना दी जाती हैं। इसके बाद नए नियम आते हैं। यह व्यवस्था कब बदलेगी?नियमित निरीक्षण के प्रावधानों के बावजूद यदि जांच केवल कागजों तक सीमित रह जाए, तो सुरक्षा सुनिश्चित नहीं हो सकती। औचक निरीक्षण होना चाहिए और उसकी रिपोर्ट सार्वजनिक की जानी चाहिए। हर इमारत के बाहर फायर सेफ्टी व्यवस्था, एनओसी की वैधता और शिकायत के लिए संपर्क नंबर की जानकारी देने वाला बोर्ड होना चाहिए, ताकि आम नागरिक भी स्थिति जान सकें।

इस दिशा में तीन कदम जरूरी हैं। पहला, जिम्मेदारी तय हो। आग से मौत होने पर भवन मालिक के साथ उस इंजीनियर और अधिकारी की भूमिका की भी जांच हो, जिसने नक्शा पास किया या एनओसी जारी की। दूसरा, बड़ी इमारतों के निर्माण के दौरान स्वतंत्र और निष्पक्ष तकनीकी निरीक्षण हो, ताकि स्थानीय सांघाटों की आशंका खत्म हो। तीसरा, जानबूझकर सुरक्षा नियमों की अनदेखी करने और गंभीर लापरवाही से मौत होने के मामलों में कानून के अनुसार कठोर दंड सुनिश्चित किया जाए।

नए नियम और ए, बी, सी श्रेणियां तभी कारगर होंगी, जब विभागीय लापरवाही पर भी अंकुश लगेगा। सरकार को समझना होगा कि फायर सेफ्टी का बोर्ड इमारत बनने के बाद नहीं, बल्कि नींव खोदते समय ही सुरक्षा की शर्तों के साथ लगना चाहिए। नींव में ईमानदारी होगी, तो छत पर चिताएं नहीं जलेंगी। यदि शुरुआत में ही बेईमानी होगी, तो हर साल हादसों के बाद नए नियमों की फाइलें बनती रहेंगी।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

है पौष्टिक भोजन को उचित समय पर खाना। नाश्ते में प्रोटीन और फाइबर, दोपहर में दाल, रोटी, चावल, सब्जी और दही तथा रात में सूप, सलाद या हल्की खिचड़ी जैसे विकल्प अपनाए जा सकते हैं।

हर घर में कुछ सरल आदतें अपनाई जा सकती हैं। सुबह पौष्टिक नाश्ता करें, दोपहर का भोजन संतुलित रखें और रात में बहुत देर से भारी भोजन करने से बचें। भोजन करते समय मोबाइल और टीवी से दूरी बनाएं, ताकि मोबाइल देखते हुए देर से खाना आना हो गया है। इससे शरीर की प्राकृतिक लय प्रभावित हो सकती है। देर रात भोजन करने से रक्त शर्करा नियंत्रण और नींद पर प्रतिकूल असर पड़ सकता है। कुछ लोगों में इससे एसिडिटी, थकान और वजन बढ़ने की समस्या भी हो सकती है।

हालांकि, केवल भोजन का समय बदलने से सभी समस्याएं दूर नहीं हो सकतीं। भोजन की गुणवत्ता और मात्रा भी उतनी ही महत्वपूर्ण हैं। शाम सात बजे समोसे और मीठी चाय पीना भी स्वस्थ विकल्प नहीं है। सही तरीका

जीवनशैली ने भोजन और नींद की दिनचर्या को प्रभावित किया है। देर तक काम करना, ट्रैफिक में समय बिताना, रात में जिम जाना और मोबाइल देखते हुए देर से खाना आना हो गया है। इससे शरीर की प्राकृतिक लय प्रभावित हो सकती है। देर रात भोजन करने से रक्त शर्करा नियंत्रण और नींद पर प्रतिकूल असर पड़ सकता है। कुछ लोगों में इससे एसिडिटी, थकान और वजन बढ़ने की समस्या भी हो सकती है। हालांकि, केवल भोजन का समय बदलने से सभी समस्याएं दूर नहीं हो सकतीं। भोजन की गुणवत्ता और मात्रा भी उतनी ही महत्वपूर्ण हैं। शाम सात बजे समोसे और मीठी चाय पीना भी स्वस्थ विकल्प नहीं है। सही तरीका

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

सेहत की असली चाबी क्या में नहीं, कब में छिपी है...

थाली में क्या है, यह पुराना सवाल है, यड़ी में क्या बजा है, यह नया सवाल

शरीर की गतिविधियां धीमी होने लगती हैं और नींद से संबंधित हार्मोन मेलैटोनिन का स्तर बढ़ने लगता है। ऐसे में भोजन का समय पाचन और चयापचय को प्रभावित कर सकता है। भारतीय परंपराओं में भी समय पर भोजन करने की सीख मिलती रही है। जैन समाज में सूर्यास्त के बाद भोजन न करने की परंपरा है। आयुर्वेद में दोपहर के भोजन को महत्वपूर्ण माना गया है और रात में हल्का, सुपाच्य भोजन करने की सलाह दी जाती रही है। गांवों में बुजुर्ग भी अक्सर शाम ढलने के बाद जल्दी भोजन कर लेते हैं। आधुनिक विज्ञान अब समय के अनुसार भोजन करने की इस अवधारणा पर शोध कर रहा है, जिसे टाइम-रिस्ट्रिक्टेड ईटिंग भी कहा जाता है। आधुनिक



जीवनशैली ने भोजन और नींद की दिनचर्या को प्रभावित किया है। देर तक काम करना, ट्रैफिक में समय बिताना, रात में जिम जाना और मोबाइल देखते हुए देर से खाना आना हो गया है। इससे शरीर की प्राकृतिक लय प्रभावित हो सकती है। देर रात भोजन करने से रक्त शर्करा नियंत्रण और नींद पर प्रतिकूल असर पड़ सकता है। कुछ लोगों में इससे एसिडिटी, थकान और वजन बढ़ने की समस्या भी हो सकती है। हालांकि, केवल भोजन का समय बदलने से सभी समस्याएं दूर नहीं हो सकतीं। भोजन की गुणवत्ता और मात्रा भी उतनी ही महत्वपूर्ण हैं। शाम सात बजे समोसे और मीठी चाय पीना भी स्वस्थ विकल्प नहीं है। सही तरीका

है पौष्टिक भोजन को उचित समय पर खाना। नाश्ते में प्रोटीन और फाइबर, दोपहर में दाल, रोटी, चावल, सब्जी और दही तथा रात में सूप, सलाद या हल्की खिचड़ी जैसे विकल्प अपनाए जा सकते हैं। हर घर में कुछ सरल आदतें अपनाई जा सकती हैं। सुबह पौष्टिक नाश्ता करें, दोपहर का भोजन संतुलित रखें और रात में बहुत देर से भारी भोजन करने से बचें। भोजन करते समय मोबाइल और टीवी से दूरी बनाएं, ताकि मोबाइल देखते हुए देर से खाना आना हो गया है। इससे शरी